INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 16 | ISSUE - 4 | MAY – 2026

मध्यप्रदेश में शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में महाविद्यालयीन शिक्षण व्यवस्थाओं की भूमिका

रवीन्द्र कुमार धुर्वे
शोधार्थी, संगीत विभाग
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. देवाशीष बनर्जी
विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

भारतीय शास्त्रीय संगीत, जो हजारों वर्षों से भारतीय संस्कृति और परंपरा की आत्मा रहा है, समय के साथ अनेक परिवर्तनों से गुजरता हुआ आज भी अपनी गरिमा और गहराई के साथ जीवित है। इस संगीत परंपरा को जीवंत बनाए रखने के लिए जहाँ एक ओर गुरुकुल परंपरा और घरानों की परंपराएं जिम्मेदार रहीं, वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् औपचारिक महाविद्यालयीन शिक्षण व्यवस्थाओं ने इसके प्रचार–प्रसार और वैज्ञानिक शिक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मध्यप्रदेश अपने सांस्कृतिक वैभव और विविध कलाओं के पोषण के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। यहाँ के ग्वालियर, इंदौर, उज्जैन, जबलपुर, भोपाल आदि नगर ऐतिहासिक रूप से संगीत के गढ़ रहे हैं। स्वाधीनता के बाद जब देशभर में शिक्षण व्यवस्था को पुनर्गठित करने की दिशा में कदम उठाए गए, तब मध्यप्रदेश ने भी शिक्षा के क्षेत्र में संगीत को औपचारिक रूप से पाठ्यक्रम में शामिल करने की पहल की। इससे शास्त्रीय संगीत को केवल मंचों और परिवारों तक सीमित न रखकर महाविद्यालयों के विद्यार्थियों तक पहुँचाया गया।

मुख्य शब्द – भारतीय शास्त्रीय संगीत, भारतीय संस्कृति, संगीत परंपरा, गुरुकुल परंपरा एवं महाविद्यालयीन शिक्षण व्यवस्था।

प्रस्तावना –

महाविद्यालयीन स्तर पर संगीत को एक गंभीर एवं विशिष्ट शैक्षणिक अनुशासन के रूप में विकसित किया गया। अनेक विश्वविद्यालयों में बी.ए., एम.ए. तथा पीएच.डी. जैसे पाठ्यक्रमों का प्रारम्भ किया गया। साथ ही डिप्लोमा, सर्टिफिकेट तथा अलंकार जैसी व्यावसायिक परीक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थियों को व्यवस्थित प्रशिक्षण प्रदान किया गया। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप छात्र केवल संगीतज्ञ के रूप में ही नहीं, अपितु शिक्षक, शोधकर्ता, संगीत पत्रकार, प्रस्तोता तथा आयोजक के रूप में भी स्थापित हुए। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों द्वारा समय–समय पर आयोजित संगीत कार्यशालाओं, संगोष्ठियों, युवा महोत्सवों, प्रतियोगिताओं तथा सांस्कृतिक आयोजनों ने संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस शैक्षणिक वातावरण ने

शास्त्रीय संगीत को जनसामान्य के निकट लाने का कार्य किया तथा विद्यार्थियों को मंच प्रदान कर उनकी प्रतिभा को विकसित करने का अवसर उपलब्ध कराया।[1]

महाविद्यालयों के माध्यम से प्रदान की जा रही संगीत शिक्षा ने न केवल पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित किया, बल्कि उसे आधुनिक दृष्टिकोण तथा अनुसंधान से जोड़कर समाज में उसकी स्वीकार्यता को भी विस्तारित किया। वर्तमान तकनीकी युग में, जब पारंपरिक कलाओं के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह उपस्थित हो रहे हैं, तब इन शिक्षण संस्थानों की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।[2]

अंग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात् अनेक क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुए, जिनमें शिक्षा का क्षेत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'सर्वजन शिक्षा' की अवधारणा को आधार बनाकर उन्होंने सामुदायिक शिक्षा को प्राथमिकता प्रदान की। भारत में अनेक मेडिकल तथा इंजीनियरिंग महाविद्यालयों की स्थापना कर वैज्ञानिक प्रगति को प्रोत्साहित किया गया। साथ ही प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को संगठित एवं व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया गया। परीक्षाओं की प्रणाली द्वारा विद्यार्थियों की बौद्धिक क्षमता का मूल्यांकन किया जाने लगा तथा छात्रवृत्तियों एवं अनुदानों के माध्यम से जनसामान्य को शिक्षा के प्रति प्रेरित किया गया। स्त्री शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा को भी विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया गया।[3]

पं. जवाहरलाल नेहरू के अनुसार अंग्रेजी शिक्षा एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से पूर्व भारतीय संस्कृति मुख्यतः हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति के रूप में विद्यमान थी। इस सांस्कृतिक परंपरा में पाश्चात्य प्रभाव जोड़ने वाले प्रमुख व्यक्तित्व राजा राममोहन राय थे। उन्होंने सन् 1828 ई. में ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसमें शास्त्रीय संगीत आधारित प्रार्थना पद्धति को विशेष महत्व प्रदान किया गया। इस संगीत में खोल तथा ऑर्गन (हारमोनियम का विशेष प्रकार) का प्रयोग संगत हेतु किया जाता था, जो भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत परंपराओं का सुंदर समन्वय था। इसी काल में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के कार्यों को नियमित करने के लिए प्रशासकीय शिक्षा विभागों की स्थापना की गई तथा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शिक्षण पद्धति पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा।[4]

अंग्रेजी शासन के अंतिम चरण में सन् 1882 ई. में लॉर्ड रिपन द्वारा 'भारतीय शिक्षा आयोग' की स्थापना की गई, जिसके अध्यक्ष विलियम हंटर थे। इसी कारण इसे 'हंटर कमीशन' कहा गया। इस आयोग के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का दायित्व सरकार से हटाकर नगरपालिकाओं एवं जिला परिषदों को सौंपा गया। आर्थिक व्यवस्था हेतु धनराशि का एक भाग स्थानीय निकायों द्वारा वहन करने का प्रावधान किया गया तथा प्रांतीय आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम निर्धारित करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई। विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की व्यवस्था भी परीक्षाफल के आधार पर सुनिश्चित की गई।[5]

महाविद्यालयों के भवन, पुस्तकालय, शिक्षण सामग्री तथा विद्यार्थियों के बैठने की व्यवस्था हेतु विशेष अनुदान प्रदान किए गए। परिणामस्वरूप सन् 1902 ई. तक भारत में अनेक महाविद्यालय भारतीय प्रबंधन एवं मिशनरियों के संचालन में कार्यरत थे। यद्यपि कुछ भारतीय संस्थानों में आर्थिक अभाव के कारण शिक्षा का स्तर प्रभावित होने लगा था।[6]

अंग्रेजों द्वारा आरम्भ की गई शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य भारतीयों को उनकी प्रशासनिक आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार करना था, ताकि कम वेतन पर प्रशिक्षित कर्मचारी उपलब्ध हो सकें। इसी कारण प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा एवं विशेष प्रशिक्षण हेतु विदेश भेजने की व्यवस्था भी की गई।[7]

सन् 1899 ई. में लॉर्ड कर्जन के भारत के गवर्नर जनरल बनने के पश्चात् शिक्षा नीति में व्यापक परिवर्तन किए गए। सन् 1902 ई. में शिक्षा संबंधी प्रस्ताव पारित कर विश्वविद्यालयीय शिक्षा की गुणवत्ता पर बल दिया गया तथा सामान्य शिक्षा के साथ कला शिक्षा को भी महत्व प्रदान किया गया।[8]

अंग्रेजों द्वारा संगीत के विकास हेतु प्रत्यक्ष रूप से कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए, तथापि मानविकी, विज्ञान एवं अन्य विषयों की शिक्षा प्रणाली के पाश्चात्यकरण के परिणामस्वरूप संगीत तथा ललित कलाओं की शिक्षा भी संस्थागत एवं सामूहिक रूप से विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में प्रदान की जाने लगी।[9] इस प्रकार संगीत शिक्षा धीरे–धीरे पारंपरिक सीमाओं से निकलकर औपचारिक शैक्षणिक संरचना का अंग बन गई।

विश्लेषण –

जन सामान्य में शास्त्रीय संगीत के अधिक से अधिक प्रचार–प्रसार एवं शिक्षण में नियमबद्धता और स्तरीकरण के उद्देश्य से संगीत विषय की संस्थागत सामूहिक शिक्षण विधि अपनाना आवश्यक था। शिक्षा का यही एक ऐसा माध्यम था, जिसमें अधिकतम व्यक्तियों को शिक्षित करना संभव था। इस उद्देश्य को लेकर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही पूरे भारत में इस प्रकार के प्रयास प्रारम्भ हो गये थे। इस प्रकार पाश्चात्यों की 'स्कूली शिक्षा' की चौखट में संगीत को बांधने का प्रयत्न किया जाने लगा और भिन्न–भिन्न संगीत शिक्षा संस्थान विद्यालयों के रूप में उभरने लगे क्योंकि इस पद्धति से एक ही समय में, एक ही शिक्षक द्वारा अनेक विद्यार्थियों को सिखाना संभव था। इस प्रकार बदलती राजनैतिक और आर्थिक स्थिति में अंग्रेजी स्कूली शिक्षा से प्रभावित होकर, संगीत को भी विद्यालयीन स्तर पर अध्यापित करने के प्रयास आरम्भ हुए और संगीत शिक्षा जन साधारण को सुलभ कराने के लिए विशेष बुद्धिजीवी वर्ग प्रयत्नशील रहा।

इस कार्य का आरम्भ करने वालों में रामशंकर भट्टाचार्य के शिष्यों में से एक क्षेत्रमोहन गोस्वामी थे जिनके प्रयत्नस्वरूप सन् 1871 में 'संगीत विद्यालय कोलकाता' की स्थापना हुई तथा संगीत को जनसामान्य में प्रचलित करने का स्तुत्य कार्य आरम्भ हुआ।

सन् 1880 से कुछ पूर्व जामनगर में पं. आदित्यराज ने संगीत के सामूहिक शिक्षण का प्रयास किया था। बंगाल प्रान्त में आदि एवं विशिष्ट गायक के रूप में रमाशंकर भट्टाचार्य का नाम अग्रगण्य है। इनके प्रयत्नों से, बाँकुश में 'म्यूजिकल सोसायटी' एवं दो संगीत विद्यालयों की स्थपना क्रमशः बाँकुश और विष्णुपुर में सन् 1883 में हुई। म्यूजिकल सोसायटी का उद्देश्य जन साधारण में शास्त्रीय संगीत का विकास करना था।

इसी प्रकार सौरिन्द्र मोहन टैगोर (एस.एम. टैगोर) ने संगीत को महलों की चारदीवारी से निकालकर जनसाधारण को सुलभ कराने का प्रयास किया। इस दृष्टि से आपने बंगाल एकेडमी ऑफ म्यूजिक की स्थापना सन 1883 में रमाशंकर भट्टाचार्य की सहायता से की। तत्कालीन बाँकुश के मजिस्ट्रेट मि. जे. एण्डरसन ने इन कार्यों में विशेष सहायता दी।

इस प्रकार के प्रयास यद्यपि अंग्रेजीयत से प्रभावित होने के परिणामस्वरूप आरम्भ हुए तथापि अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को संगीत पर भी लागू करने की दिशा में बड़ौदा नरेश सयाजीराव का कदम उनकी यूरोप यात्रा के पश्चात सन् 1886 में उठा।

सन् 1901 में स्थापना की गयी। लाहौर में गन्धर्व महाविद्यालय संगीत शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परीक्षण था, जिनमें प्राचीन अनुकूल प्रणाली और आधुनिक संस्थागत शिक्षण प्रणाली का अद्भुत समन्वय था। इस विद्यालय में सुनिश्चित समय पर आकर सीखने वाले जिज्ञासुओं के अलावा कुछ ऐसे भी विद्यार्थी थे जो आश्रमवासियों के रूप में रहकर गुरु के सानिध्य में दीर्घकाल तक संगीत की साधना करते थे।

वास्तविक रूप में पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के समान एक और भारतीय संगीत आध्यात्मिकता थी तो दूसरी ओर तत्कालीन बिट्रिश सरकार के माध्यम से स्थापित ईसाई मिशनरी संस्थाओं के रूप में संचालित किये गये कालेज इत्यादि की व्यवस्था थी, जिनमें शिक्षा प्रदान करना एक मानवीय लक्ष्य था और सेवा–भाव की प्रधानता थी। अतः 5 मई 1901 को लाहौर में गन्धर्व महाविद्यालय की स्थापना इसी ध्येय से की गई कि जिनमें सात्विक वृत्ति से युक्त के कलाकार विशुद्ध भारतीय संगीत का शिक्षण मानवीय सेवा भावना के ध्येय से करे। इसके हेतु सुव्यवस्थित अभ्यास क्रम और सुसंस्कृति निर्व्यसनी व चरित्रवान, कुशल संगीत शिक्षकों का प्रबंध भारत के बड़े–बड़े शहरों में स्थापित गान्धर्व महाविद्यालयों की अनेक शाखाओं हेतु किया गया। इन शिक्षकों को उपदेशक की संज्ञा प्रदान किया गया। 1908 में गान्धर्व महाविद्यालय का ही एक केन्द्र बम्बई में भी स्थापित किया गया। प्रयोगात्मक रूप में यहाँ विद्यार्थियों के भोजन वस्त्रादि का प्रबंध विद्यालय की तरफ से किया गया। विद्यालय की साफ–सफाई, भोजन प्रबंध, सामग्री संयम इत्यादि सभी व्यवस्थाओं का भार विद्यार्थियों पर डाला गया तथा एक तरह से विद्यालयीन वातावरण को गुरुकुल वातावरण के समान बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया। अनुशासन, संयम, नियमबद्धता और क्रम को विशिष्ट महत्व प्रदान करते हुए और धार्मिक संस्कारों की शिक्षा से अनुप्रमाणित संगीत शिक्षा प्रदान करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य माना गया।

शास्त्रीय संगीत शिक्षा को सामाजिक संरक्षण मुहैया कराने की दृष्टिकोण से यह विद्यालय समाज की धन राशि पर ही निर्भर रहता था। स्वयं संगीत कार्यक्रम आयोजित करके जो धन व्यक्तियों से मिलती थी उसे ही पुनः विद्यालय स्तर पर खर्च कर दिया जाता था क्योंकि पं. जी का ध्येय धन प्राप्त करना नहीं अपितु संगीत

विद्या को अन्य विधाओं के समकक्ष समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान दिलवाना था। परिणामस्वरूप उसके नियमन हेतु और संगीत शिक्षा को विधिवत बनाने हेतु पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, स्वरलिप और परीक्षा के पश्चात् कुछ उपाधि वितरण का उपक्रम करके संगीत शिक्षा को एक विशिष्ट आकार उपलब्ध करने का प्रयत्न किया।

शैनः–शैनः पूना, बम्बई, नागपुर और अन्य स्थानों पर गान्धर्व महाविद्यालय की कई शाखाएं खोली गई, इन शाखाओं में प्रबंध की एकरूपता स्थापित करने की दृष्टि से दिसम्बर 1931 ई. में अखिल भारतीय गन्धर्व महाविद्यालय मण्डल की स्थापना पं. नारायण और पं. वामन राव पाध्ये इत्यादि ने अपने महत्वपूर्ण योगदान से मण्डल के संचालन में निरन्तर वृद्धि की। इस संस्था द्वारा संगीत के शिक्षाकार्य, कलाकारों, संगठनात्मक कार्य तथा विद्वानों की सामाजिक प्रतिष्ठा का कार्य, शिक्षकों और विद्वानों की सामाजिक समस्याओं के निवारण खोजने का कार्य, संगीत की साहित्यिक सुदृढ़ता का कार्य, संशोधनात्मक कार्य तथा जनसाधारण में शास्त्रीय संगीत के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने इत्यादि काफी सुचारू रूप से किया गया।

विष्णु दिगम्बर जी ग्वालियर घराने के अनुयायी थे, किन्तु उनके माध्यम से अप्रस्थापित गन्धर्व महाविद्यालय वरिष्ठ गायकी की परम्परा का विस्तार करने वाली अथवा ग्वालियर घराने की ही गायकी का आग्रह करने वाली संस्था के रूप में स्थापित नहीं किया गया था। अपितु इसका ध्येय सिर्फ संगीतकारों को संगीत क्षेत्र में कार्य प्रवृत्त करना, संगीतकारों से संगीत शिक्षण कार्य में लाभ उठाना और संगीतकारों के लिए समाज में प्रतिष्ठा स्थापित करना तथा इन सभी कार्यों से संगीत को अन्य कलाओं व विधाओं के समकक्ष स्तर पर सामाजिक रूप से ग्राह्य बनाया था। अतएव संगीत के प्रति आस्था रखने वाला जिज्ञासु किसी भी घराने अथवा किसी भी समुदाय का अनुयायी क्यों न हो, इस संस्था में संगीत सीखने का अधिकारी होता था। इस तरह विष्णु दिगम्बर जी के घराना परम्परा से संगीत की शिक्षा ग्रहण करके संस्थागत शिक्षण के रूप में संगीत शिक्षा के प्रचार–प्रसार के कार्य में महान योगदान दिया।

राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय मध्य प्रदेश में शास्त्रीय संगीत के संरक्षण प्रचार–प्रसार और शिक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसकी स्थापना वर्ष 2008 में मध्य प्रदेश सरकार के माध्यम से किया गया था और इसका नाम 15वीं शताब्दी के संगीत संरक्षक राजा मानसिंह तोमर के सम्मान में रखा गया है। यह विश्वविद्यालय में शास्त्रीय संगीत में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है, जो इस प्रकार है –

ध्रुपद हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की प्राचीनतम शैली है। राजा मानसिंह तोमर ने अपने शासनकाल में इस शैली को संरक्षित किया और इसे लोकप्रिय बनाया। इनके योगदानों को सम्मानित करते हुए विश्वविद्यालय में वर्ष 2011 में ध्रुपद केन्द्र की स्थापना किया गया, जहाँ गुरु–शिष्य परम्परा के माध्यम से विद्यार्थियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

इस विश्वविद्यालय में शास्त्रीय संगीत के भिन्न–भिन्न पाठ्यक्रम संचालित किया जाता है, जिनमें बी. ए, एम.ए. और पी–एच.डी. सम्मिलित हैं। इन पाठ्यक्रमों में गायन, वादन, संगीत सिद्धान्त और इतिहास जैसे विषयों की गहन शिक्षा प्रदान किया जाता है। ग्वालियर घराना हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का एक प्रमुख घराना है। विश्वविद्यालय इस घराने की परम्परा को जीवित रखने हेतु विभिन्न कार्यक्रमों तथा कार्यशालाओं का आयोजन करता है, जिससे दावों को इस विशिष्ट शैली की समूह तथा अभ्यास प्राप्त होता है। विश्वविद्यालय के माध्यम से तानसेन स्वर स्मृति जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है, जिनमें ग्वालियर घराने की सांगीतिक विरासत को अभिव्यक्त किया जाता है। ये कार्यक्रम छात्रों तथा संगीत प्रेमियों को शास्त्रीय संगीत की विविधता एवं गहराई से परिचित कराते हैं। विश्वविद्यालय में शास्त्रीय संगीत के विविध पहलुओं पर अनुसंधान कार्य किया जाता है, जिससे संगीत के सिद्धान्त, इतिहास एवं व्यावहारिक पक्षों की गहन समझ विकसित होती है। यह शोध कार्य संगीत के क्षेत्र में नवाचार और ज्ञानवर्धन में सहायक होते हैं।

राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय शास्त्रीय संगीत के संरक्षण, शिक्षा और प्रचार–प्रसार में एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में कार्य कर रहा है। इसके माध्यम से न केवल संगीत की प्राचीन परम्पराओं को जीवित रखा जा रहा है, अपितु नयी पीढ़ी को भी इस सम्पन्न सांस्कृतिक विरासत से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है।

शंकर गन्धर्व महाविद्यालय, ग्वालियर मध्यप्रदेश में विद्यमान एवं प्रतिष्ठित संगीत शिक्षण संस्थान है, जिसकी स्थापना वर्ष 1914 में पंडित कृष्णराव शंकर द्वारा किया गया है। यह संस्थान ग्वालियर घराने की ख्याल गायकी की परम्परा को संरक्षित और प्रखरित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहा है। यह

महाविद्यालय ग्वालियर घराने की ख्याल गायकी की शैली को विकसित करने का कार्य करता है। यह घराना हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का एक प्रमुख घराना है और महाविद्यालय इस परम्परा को जीवित रखने में सहायता कर रहा है। पंडित कृष्णराव शंकर ने संगीत परीक्षा हेतु पाठ्यक्रम तैयार किये और आठ पुस्तकें लिखीं। संगीत शिक्षा को एक संरचित रूप मिला। महाविद्यालय में प्रशिक्षित अनेक संगीतकारों द्वारा संगीत की जगत में अपना नाम किया है, जिनमें पंडित लक्षणराव, पंडित चन्द्रकांत और डॉ. मीता पंडित इत्यादि संगीतकार एवं कलाकार सम्मिलित हैं। महाविद्यालय विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा संगीत सम्मेलनों का आयोजन करता है, जिससे शास्त्रीय संगीत की परम्परा को प्रोत्साहन मिलती है। शंकर गन्धर्व महाविद्यालय, ग्वालियर में शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार करने में अहम योगदान दे रहा है। यह महाविद्यालय शास्त्रीय संगीत के प्राचीन परम्पराओं को जीवित रखने के साथ–साथ नवीन पीढी को भी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से जोड़ने का सफल प्रयास कर रहा है।

इस विश्वविद्यालय की स्थापना मध्य प्रदेश के गवर्नर के माध्यम से वर्ष 1970 के मध्य प्रदेश अध्यादेश संख्या 7 के तहत 01 अगस्त 1970 में किया गया। तत्पश्चात् इस अध्यादेश को राज्य की विधानसभा ने वर्ष 1970 के अधिनियम संख्या 28 के रूप में पारित कर दिया। वर्ष 1973 के 22वें मध्यप्रदेश विश्वविद्यालय अधिनियम के पारित होने से वर्ष 1970 का भोपाल विश्वविद्यालय अधिनियम खारिज कर दिया गया, जिनमें जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर तथा इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ को छोड़कर राज्य के समग्र विश्वविद्यालयों को शामिल कर लिया गया। यह विश्वविद्यालय स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर विद्यार्थियों को संगीत की उपाधियां प्रदान करता है। यहाँ शैक्षणिक सत्र जुलाई से जून तक की अवधि में जारी रहता है। यह विश्वविद्यालय वर्ष में दो बार परीक्षाएं आयोजित कराता है।

कालीदास अकादमी उज्जैन मध्य प्रदेश सरकार के संस्कृत विभाग के माध्यम से वर्ष 1978 में स्थापित एक बहुविषयक सांस्कृतिक संस्था है। इस अकादमी का ध्येय महाकवि कालीदास की स्मृति को जीवित रखते हुए शास्त्रीय परम्पराओं का संरक्षण, अध्ययन तथा प्रचार–प्रसार करना है। यह अकादमी नियमित रूप से शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य के कार्यक्रमों का आयोजन करती है, जिसमें देश–विदेश के प्रतिष्ठित कलाकार हिस्सा लेते हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से भारतीय संगीत की विविधता और गहराई को अभिव्यक्त किया जाता है। अखिल भारतीय कालीदास समारोह उत्सव अकादमी के माध्यम से आयोजित किया जाता है, जिनमें संस्कृत, हिन्दी तथा लोक भाषाओं में कालीदास के नाटकों का मंचन, शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य प्रस्तुतियाँ सम्मिलित होती है। यह समारोह शास्त्रीय कलाओं के प्रचार–प्रसार का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। अकादमी शास्त्रीय संगीत, नाट्यशास्त्र और अन्य कलाओं पर शोध को प्रोत्साहित करती है। यह विभिन्न शोध पत्रिकाओं एवं शोध पुस्तकों का प्रकाशन करती है, जो संगीत और कला के क्षेत्र में ज्ञानवर्धक में सहायक है। यह अकादमी विविध कार्यशालाओं तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करती है, जिनमें युवा आयु वर्ग के व्यक्तियों को शास्त्रीय संगीत,. नृत्य एवं नाट्यकला की शिक्षा दिया जाता है। यह कार्यक्रम पारम्परिक कलाओं की नवीन पीढ़ी में रुचि जगाने में सहायक है। यह अकादमी शास्त्रीय संगीत और अन्य पारम्परिक कलाओं के प्रचार–प्रसार और कलाओं के अध्ययन व संरक्षण में अपनी प्रमुख भूमिका अदा की है। इसके माध्यम से न सिर्फ कालीदास की साहित्यिक विरासत को जीवित रखा जा रहा है, अपितु भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं को भी नवीन पीढी तक पहुँचाया जा रहा है।

यह केन्द्र भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्राचीनतम गायन शैली 'ध्रुपद' के संरक्षण, शिक्षण और प्रचार–प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसकी स्थापना वर्ष 1981 में मध्य प्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग के माध्यम से किया गया था, जिसका ध्येय गुरु–शिष्य परम्परा के माध्यम से ध्रुपद गायन की शिक्षा प्रदान करना था। ध्रुपद केन्द्र में शिक्षा पारम्परिक गुरु–शिष्य परम्परा के अनुसार दी जाती है, जिसमें छात्रों को चार वर्षों के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। इस प्रणाली में राग, आलाप, बंदिश पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ध्रुपद केन्द्र से प्रशिक्षित अनेक कलाकारों ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की है, इसमें गायक उदय भवालकर, गुंदेया बंधु (उमाकांत एवं रमाकांत गुंदेया) और अशोक संक्रित्यायन जैसे नाम सम्मिलित हैं।

इस केन्द्र ने ध्रुपद संगीत को पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, इसने न सिर्फ भारत में अपितु विदेशों में इस शैली की लोकप्रियता बढ़ाई है। ध्रुपद केन्द्र नियमित रूप से कार्यशालाओं और संगीत समारोहों का आयोजन करता है, जिनमें देश–विदेश के कलाकार भाग लेते हैं। ये कार्यक्रम ध्रुपद संगीत के

प्रचार–प्रसार में सहायक होते हैं। ध्रुपद केन्द्र में महिलाओं को भी ध्रुपद जैसे वाद्ययंत्रों की शिक्षा दी जाती है, जिससे इस क्षेत्र में लैंगिक समानता को प्रोत्साहन मिलता है। ध्रुपद केन्द्र भोपाल शास्त्रीय संगीत की ध्रुपद शैली के संरक्षण, शिक्षा और प्रचार में एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में कार्य कर रहा है। इसके द्वारा प्राचीन कलाओं को आने वाले पीढियों तक पहुँचायी जा रही है, जिससे नवीन पीढ़ी को भारतीय समृद्ध सांस्कृतिक विरासतों से भलिभाँति जोड़ने का सकल्प प्रयास किया जा रहा है।

भारत के मध्य भाग में मध्य–प्रदेश, सतपुड़ा की पूर्वी श्रृंखलाओं के बीच, नागवंशी शासकों के एक छोटे से राज्य खैरागढ़ के भूतपूर्व नरेश, वीरेन्द्र बहादुर सिंह और रानी पद्मावती देवी ने अपनी दिवंगत तीन वर्षीय पुत्री इंदिरा देवी की स्मृति में 14 अक्टूबर सन 1956 में 'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' की स्थापना की जिसका उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के कर कमलों से हुआ।

इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के प्रथम उप–कुलपति के रूप में पं. श्रीकृष्ण रातांजनकर जी की नियुक्ति 5 फरवरी 1957 को होने के साथ ही विश्वविद्यालयीन कार्य–कलाप प्रारम्भ हुए। इसी वर्ष इंदिरा संगीत अकादमी की वोकेशनल योजना का परित्याग तथा विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रमों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन किया गया। यह विश्वविद्यालय मध्य–प्रदेश के अंतर्गत शासकीय अनुदान प्राप्त करने वाले सभी संगीत विद्यालयों एवं महाविद्यालयों को अपने साथ सम्बद्ध करने हेतु एक्ट द्वारा अधिकृत था। अतः वर्ष 1961 तक इस विश्वविद्यालय से मध्य प्रदेश तथा उसके बाहर की कुल 26 संस्थाएँ स्वेच्छा से सम्बद्ध हो गईं।

सन् 1964 में जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर तथा इंदौर विश्वविद्यालय की स्थापना हुई तथा इन विश्वविद्यालयों में संगीत संकाय प्रारम्भ करने के उद्देश्य से इनकी परिधि के अंतर्गत आने वाले ग्वालियर के सात संगीत महाविद्यालय तथा इंदौर के दो संगीत महाविद्यालय मध्य प्रदेश द्वारा इन नगरों के विश्वविद्यालय से वर्ष 1966–67 में सम्बद्ध कर दिये गए, जिसके परिणामस्वरूप इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ से इनकी संबद्धता समाप्त हो गई। परन्तु, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ द्वारा प्रांत के संगीत महाविद्यालयों के संबद्धीकरण के उसके अधिकार के संबंध में राज्य शासन का ध्यानाकर्षण किये जाने के परिणामस्वरूप सन 1972–73 में ग्वालियर तथा इंदौर के सभी महाविद्यालयों को इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ को पुनः लौटा दिया गया। इन सभी संस्थाओं के पाठ्यक्रमों एवं परीक्षाओं का निर्धारण किया गया तथा मध्यमा (प्रथम चार वर्ष), विद (दो वर्ष), विद ऑनर्स (एक वर्ष), कोविद (दो वर्ष) तथा अन्त में संगीताचार्य उपाधियों के शिक्षण एवं परीक्षण की व्यवस्था की गई।

मध्यमा, विद, कोविद के संगीत पाठ्यक्रम–मध्यमा की परीक्षा हेतु पाँचवीं कक्षा (प्राथमिक परीक्षा) उत्तीर्ण तथा कोविद की परीक्षा हेतु हायर सैकेन्डरी की परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक था। मध्य–प्रदेश शासन निरीक्षण समिति 1967 की दृष्टि में ये सभी पाठ्यक्रम डिप्लोमा या उपाधियाँ मात्र थीं। विश्वविद्यालयीन स्तर के अनुरूप उन्हें डिग्री या स्नातकोत्तर (पोस्ट ग्रेजुएट) डिग्री नहीं कहा जा सकता था।

किसी भी डिग्री पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु हायर सैकेण्डरी परीक्षा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य होता है तथा हायर सैकेण्डरी के उपरान्त डिग्री पाठ्यक्रम पुनर्गठन संबंधी अनुशंसाओं को ध्यान में रखते हुए सन 1971 से पाठ्यक्रम की तीन धाराएँ प्रवाहित की गईं। प्रथम धारा के अन्तर्गत 'मध्यमा', 'विद' एवं 'कोविद' पाठ्यक्रम था। इसमें मध्यमा के चार वर्ष के पाठ्यक्रम को दो भागों में विभक्त कर प्रथम दो वर्ष प्रथमा तथा दो वर्ष मध्यमा परीक्षा के लिए निश्चित किए गए। मध्यमा परीक्षा में बैठते समय पाँचवीं कक्षा में (प्राइमरी परीक्षा) उत्तीर्ण होना आवश्यक था तथा कोविद परीक्षा में बैठने के लिए हायर सैकेण्डरी परीक्षा पास होने की अनिवार्यता थी। पाठ्यक्रम की यह धारा अल्पआयु में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों अथवा किन्हीं कारणों से पर्याप्त सामान्य शिक्षा न प्राप्त कर सकने वाले, परन्तु संगीत की दृष्टि से प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थियों के लिए उपयोगी थी।

इस विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम की दूसरी धारा के अन्तर्गत मध्यमा के उपरान्त बी. म्यूज (बैचलर ऑफ म्यूजिक), फिर त्रिवर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम तथा उसके उपरांत एम. म्यूज (मास्टर ऑफ म्यूजिक) का दो वर्ष का स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम है। विश्वविद्यालयीन अपेक्षाओं के अनुरूप बी. म्यूज डिग्री पाठ्यक्रम में प्रवेश के समय ही संगीत में 'मध्यमा' तथा सामान्य शिक्षा में हायर सैकेण्डरी परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है। बी. म्यूज एवं एम. म्यूज की यह धारा उन विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई, जो अपनी सामान्य शिक्षा अन्यत्र लेते हुए संगीत की उपाधि ग्रहण करना चाहते हैं तथा बी. म्यूज में प्रवेश के समय तक उच्च माध्यमिक परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हैं। पाठ्यक्रम की यह धारा भी संबद्ध महाविद्यालयों में पर्याप्त उपयोगी एवं लोकप्रिय सिद्ध हुई।

पाठ्यक्रम की एक तीसरी धारा, बी.ए. ऑनर्स तथा एम.ए. के रूप में प्रचलित हुई। इसके अन्तर्गत उच्चतर माध्यमिक तथा संगीत में मध्यमा उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता है। बी.ए. ऑनर्स के इस त्रिवर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम में संगीत नृत्य अथवा चित्रकला को प्रमुख विषय की भांति तथा संगीत के सहयोगी विषय संस्कृति एवं पुरातत्व, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र तथा भाषाओं में संस्कृत, हिन्दी अथवा अंग्रेजी आदि में से एक भाषा तथा एक अन्य विषय की शिक्षा का प्रावधान है। इस विषय में संगीतशास्त्र पाठ्यक्रम के अन्तर्गत ध्वनिशास्त्र के उपयोगी अंशों का भी समावेश होता है।

उपर्युक्त पाठ्यक्रमों के प्रचलित होने के साथ ही शोध प्रबन्ध के आधार पर पीएच.डी. की उपाधि तथा वर्ष 1981–82 से एम.ए., एम. म्यूज अथवा बी.ए. तथा कोविद उत्तीर्ण विद्यार्थियों हेतु उच्च प्रायोगिक शिक्षण एवं शोध के आधार पर 'डॉक्टर ऑफ म्यूजिक' प्रदान किए जाने का प्रावधान भी हो गया है। इस वर्ष 1982–83 से विदेशी छात्रों हेतु दो वर्ष का 'म्यूजिक एप्रीसिएशन' पाठ्यक्रम तथा तीन माह का 'कन्डेन्स्ड कोर्स' भी प्रारम्भ किए गए हैं। सुगम संगीत हेतु एक वर्षीय 'गीतांजलि पाठ्यक्रम' तथा छत्तीसगढ़ी लोक संगीत डिप्लोमा के साथ अब लोक संगीत के त्रिवर्षीय डिप्लोमा–पाठ्यक्रम पिछले वर्षों से प्रभावशील हैं। इस प्रकार इस विश्वविद्यालय में शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त सुगम एवं लोकसंगीत के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था किया जाना एक उपलब्धि माना जा सकता है।

इस विश्वविद्यालय में संगीत, ललितकलाएँ एवं सहायक मानविकीय विषयों के साथ शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों में व्यापक दृष्टि और उनके बहुमुखी विकास की चेष्टा की जाती है। इसके साथ ही इन कलाओं के प्रायोगिक एवं शास्त्रीय पक्षों का अधिकाधिक विकास तथा शोध के लिए सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हों ऐसा प्रयत्न यहाँ किया जा रहा है। संबद्ध महाविद्यालयों में, किसी दूसरे महाविद्यालय के प्राचार्य या शिक्षक केन्द्राधिकारी एवं परीक्षक के रूप में भेजे जाने से, विद्यार्थियों द्वारा अनुचित साधनों के उपयोग किये जाने पर भी रोक लगी है तथा परीक्षकों द्वारा किया जाने वाला पक्षपात भी घटा है।

यू.जी.सी. की अनुशंसा के अनुसार इस विश्वविद्यालय में सन 1977–78 में आन्तरिक मूल्यांकन (इन्टरनल असेसमेन्ट) तथा 'ग्रेडिंग सिस्टम' भी परीक्षा प्रणाली में सम्मिलित किया गया था। यद्यपि, ये दोनों विधियाँ अत्यंत विकसित एवं वैज्ञानिक थीं, परन्तु कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ अनुभव होने के कारण एक वर्ष बाद ही विश्वविद्यालय शिक्षा समिति को इन दोनों विधियों को स्थगित कर देना पड़ा। ये परीक्षाएँ 'माधव संगीत विद्यालय' की परीक्षाओं के समान होने के कारण पाठ्यक्रम भी माधव संगीत विद्यालय के पाठ्यक्रम पर आधारित हैं।

पहले इस विश्वविद्यालय का खर्च शासकीय अनुदान से चल रहा था। सन 1967 में मध्यप्रदेश शासन ने विश्वविद्यालय की प्रगति का अवलोकन करने हेतु एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी ने खैरागढ़ आकर वस्तुस्थिति का अवलोकन किया तथा इसके विकास एवं उन्नति हेतु अनुशंसाएं की। परिणामस्वरूप मध्यप्रदेश शासन ने पाँच लाख रुपये का अनुदान स्वीकृत किया, जिसकी सहायता से विश्वविद्यालय का पुनर्गठन प्रारम्भ हुआ।

अभी तक एकमात्र संगीत शिक्षा प्रदान करने वाली अग्रणी संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के तहत स्थापित संगीत संकायों या विभागों की स्थापना और प्रगति का अवलोकन किया गया। इन संस्थानों का एकमात्र ध्येय संगीत शिक्षण की व्यवस्था करना था, किसी विशिष्ट कला–गुरु या घराने की शैली को प्रतिपादित करना नहीं। संगीत के उच्च स्तर, उसके घरानों/शैलियों की विशेषताओं को बनाये रखने और उसका विकास करने के उच्च आदर्शों से प्रोत्साहित होकर प्रदेश के अनेक उत्साही युवा आयु वर्ग के व्यक्तियों ने इस दिशा में भी प्रयोग किया। फलस्वरूप प्रदेश में कुछ ऐसी भी संगीत संस्थाएं स्थापित हुई, जिसमें संगीत का शिक्षण गुरु–शिष्य परम्परा के माध्यम से ही दिया जाता है और जिसमें शुरम्भ से आखिरी तक किसी एक घराने अथवा शैली में ही शिक्षण की व्यक्तिगत व्यवस्था का प्रयास किया जाता है।

निष्कर्षः

निष्कर्षतः महाविद्यालयीन शिक्षण व्यवस्थाओं ने मध्यप्रदेश में शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में अत्यंत महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की लहर चली, तब मध्यप्रदेश के शैक्षणिक संस्थानों ने शास्त्रीय संगीत को शिक्षा की मुख्यधारा में सम्मिलित कर इसे एक

संस्थागत स्वरूप प्रदान किया। इसके परिणामस्वरूप यह कला पारंपरिक दायरे से निकलकर जनसामान्य, विशेषतः युवा पीढ़ी तक पहुँच सकी। महाविद्यालयीन स्तर पर संगीत को विशिष्ट अकादमिक अनुशासन के रूप में विकसित कर छात्रों को गहन अध्ययन, व्यावसायिक प्रशिक्षण और शोध के अवसर उपलब्ध कराए गए। मध्यप्रदेश में स्थापित संगीत महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, कला केंद्रों एवं आकाशवाणी–दूरदर्शन जैसे संस्थानों के सहयोग से शास्त्रीय संगीत शिक्षा का एक सुदृढ़ नेटवर्क विकसित हुआ। यह नेटवर्क न केवल कलाकारों को मंच प्रदान करता है, बल्कि शिक्षकों, शोधकर्ताओं और संस्कृति कर्मियों की नई पीढ़ी तैयार करता है। समय पर आयोजित संगीत समारोहों, युवा महोत्सवों, कार्यशालाओं तथा पाठ्यक्रमों ने संगीत के प्रचार–प्रसार को एक संगठित दिशा दी है। हालाँकि, इस क्षेत्र में कुछ चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं, जैसे शिक्षकों की कमी, ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों का अभाव तथा विद्यार्थियों में व्यावसायिक अवसरों की सीमित जानकारी। फिर भी, महाविद्यालयीन शिक्षण व्यवस्थाएँ निरंतर इस कला के संरक्षण, संवर्धन और लोकप्रियकरण की दिशा में सक्रिय हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश की शैक्षणिक संस्थाओं ने शास्त्रीय संगीत को केवल शैक्षणिक विषय नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक परंपरा के रूप में आगे बढ़ाने का कार्य किया है, जिससे न केवल कला का संरक्षण हुआ है, बल्कि समाज में सांगीतिक चेतना का भी विकास हुआ है। भविष्य में यदि इस दिशा में नीति–निर्माण, संसाधनों की उपलब्धता और जनभागीदारी को और अधिक प्रभावी बनाया जाए, तो यह प्रयास और भी सार्थक एवं व्यापक सिद्ध हो सकते हैं।

संदर्भ –

[1] अवस्थी, सुरेशचन्द्र. शास्त्रीय संगीत का विकास. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ. 145.
[2] कुमार, अरविन्द. भारतीय लोकसंगीत की परम्परा. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन, 2017, पृ. 172.
[3] शर्मा, गोपाल. भारतीय जनसंचार माध्यम. नई दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्स, 2014, पृ. 112.
[4] चतुर्वेदी, जगदीश्वर. भारतीय संगीत और संस्कृति. नई दिल्लीः अनामिका पब्लिशर्स, 2013, पृ. 88.
[5] त्रिपाठी, रामनरेश. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि. इलाहाबादः साहित्य भवन, 2009, पृ. 118.
[6] शुक्ल, रमेशचन्द्र. भारतीय लोकनृत्य एवं संगीत. भोपालः म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2014, पृ. 136.
[7] मिश्र, गोपाल. भारतीय लोकजीवन और संगीत. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2010, पृ. 91.
[8] सिंह, आर.पी. भारतीय ग्रामीण संगीत परम्परा. जयपुरः रावत पब्लिकेशन, 2015, पृ. 104.
[9] वर्मा, लक्ष्मीनारायण. लोकसंगीत और भारतीय संस्कृति. प्रयागराजः लोकभारती प्रकाशन, 2012, पृ. 67.